

जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ॥

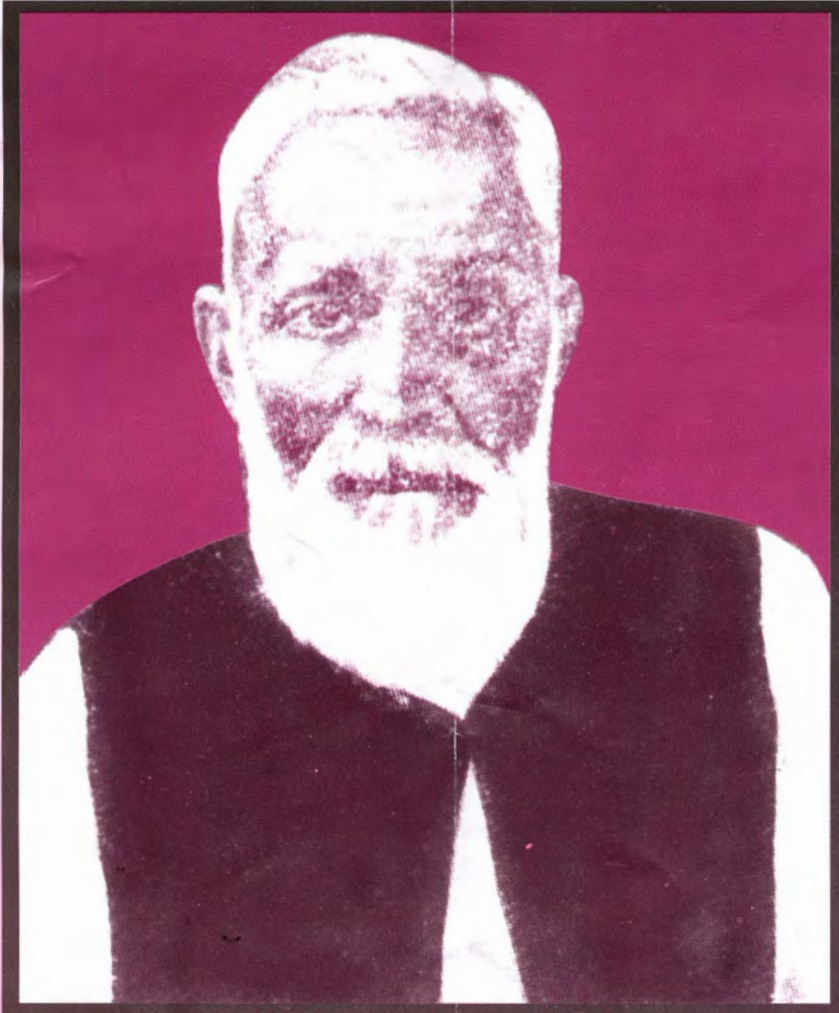
॥ ओ३म् ॥

वर्ष - ६१ अंक - १
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : (१००) रु०
आजीवन - (१०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

पौष-माघ : सम्वत् २०७५ वि०

जनवरी - २०१९



बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी
(विवरण पृष्ठ १२ पर)

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

आर्य समाज कलकत्ता का १३३वाँ वार्षिकोत्सव शनिवार २२ दिसम्बर से रविवार ३० दिसम्बर २०१८ पर्यन्त स्थानीय हृषीकेश पार्क (आम्हर्स्ट स्ट्रीट) में उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। आमन्त्रित विद्वत्जन जिन्होंने अपनी उपस्थिति से उत्सव को गरिमा प्रदान की वे थे - डा० सुरेन्द्र कुमार जी (गुरुग्राम, हरियाणा), पं० वीरेन्द्र शास्त्री (सहारनपुर), भजनोपदेशक श्री नरेश दत्त जी (बिजनौर)।

इस अवसर पर प्रतिदिन प्रातः ७.३० बजे से ९.३० बजे तक आचार्य डा० सुरेन्द्र कुमार जी के ब्रह्मत्व में अथर्ववेद पारायण यज्ञ सम्पन्न हुआ। ऋत्विक्गण के रूप में वेदपाठ कर रहे थे-पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० देवनारायण तिवारी, पं० वेद प्रकाश शास्त्री, पं० योगेशराज उपाध्याय, पं० कृष्णदेव जी मिश्र एवं पंडिता अर्चना शास्त्री। प्रतिदिन प्रातः ९.३० बजे से १०.३० बजे तक भजन व उपदेश एवं १०.३० बजे से १२ बजे तक एवं सायं ४ बजे से ६ बजे बंग भाषा में भजन व प्रवचन के कार्यक्रम सम्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन सायं ६ बजे से ९.३० बजे तक सन्ध्या भजन, व्याख्यान व स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन, बाल सत्संग, आर्य संस्कृति सम्मेलन, महिला सम्मेलन, गौरक्षा सम्मेलन तथा वेद सम्मेलन प्रमुख रूप से आयोजित किये गये।

आर्य समाज कलकत्ता द्वारा संचालित आर्य कन्या महाविद्यालय एवं रघुमल आर्य विद्यालय के छात्र व छात्राओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी उक्त अवसर पर प्रस्तुत किया गया।

शनिवार २२ दिसम्बर को प्रातः यज्ञ के उपरान्त 'ओ३म्' ध्वजोत्तोलन वैदिक विद्वान् आचार्य डा० सुरेन्द्र कुमार जी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। ध्वजगीत आर्य कन्या महाविद्यालय की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया गया। विद्यालय की छात्राओं द्वारा बैण्ड ध्वनि एवं मार्च पास्ट किया गया।

अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक एक विशाल एवं सुसज्जित शोभा-यात्रा आर्य समाज कलकत्ता, १९, विधान सरणी, कोलकाता-६ से निकाली गई जो नगर के प्रमुख मार्गों से होती हुई उत्सव-स्थल हृषीकेश पार्क में समाप्त हुयी।

अभिनन्दन समारोह

शुक्रवार २८ दिसम्बर २०१८ को सायंकालीन सत्र में सायं ६.३० बजे से ७.३० बजे के मध्य अमर स्वामी प्रकाशन विभाग के प्रतिष्ठाता श्री लाजपत राय अग्रवाल जी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर शाल, चन्दन, माला, राशि भेंट एवं

(शेषांश पृष्ठ १३ पर)



ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ६० अंक — १
पौष-माघ २०७५ वि०

दयानन्दाब्द १९३
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११९
जनवरी — २०१९



आद्य सम्पादक

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

सम्पादक :

श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल

सहयोगी संपादक :

श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

इस अंक की प्रस्तुति

- | | |
|---|--|
| १. आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ | २ |
| २. इस अंक की प्रस्तुति | ३ |
| ३. दैवमन का शिवसंकल्प | वेद-वन्दन से ४ |
| ४. स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र | पं० लेखराम द्वारा संकलित १० |
| ५. बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी | आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से १२ |
| ६. सत्यार्थ प्रकाश काव्य सुधा (महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का काव्यानुवाद) | पं० देवनारायण तिवारी १४ |
| ७. आर्य समाज: आन्दोलन की दिशा | पं० योगेशराज उपाध्याय १६ |
| ८. वर्तमान में आर्य समाज द्वारा कुरीतियों के खण्डन संघर्ष विराम के परिणाम से सबक: | उम्मेद सिंह विशारद २० |
| ९. पापों से बचें | मृदुला अग्रवाल २३ |
| १०. "ईश्वर के मुख्य पाँच काम हैं" | खुशहाल चन्द्र आर्य २६ |

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९

email : aryasamajkolkata@gmail.com

‘आर्य संसार’ में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।

किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

दैवमन का शिवसंकल्प

मन हमारी जीवन यात्रा का अति महत्वपूर्ण उपकरण है। हमारे शरीर में कुछ करण-साधन हैं जिन्हें हम बहिष्करण कहते हैं। हाथ-पैर-आंख-कान आदि भी हमारी यात्रा के साधन हैं। ये शरीर के बाहर हैं अतः इन्हें बहिष्करण कहते हैं। 'साधकतमम् करणम्'। (अष्टा० १-१-४२) जो हमारे कार्य का, कर्म का साधक, सिद्ध करने वाला हो, वह हमारा करण है। दर्शन-देखना, एक क्रिया है, एक कर्म है, इसका साधन हमारे चक्षु हैं, सो चक्षु एक करण है। ऐसे ही सुनने का साधन कान है, यह भी एक कारण है। हमारे चक्षु-श्रोत्र-नासिका आदि साधन हैं, करण हैं। किन्तु ये हमारे शरीर के बाहर के अंग हैं। प्रभु परमेश्वर ने इन अंगों को हमारे शरीर में बाहर बनाया है। अतः ये बहिष्करण हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर में भीतर भी उपकरण हैं। यों तो हृदय, गुर्दे आदि अनेकों उपकरण हमारे शरीर में अन्दर की ओर हैं, किन्तु, अन्तःकरण कहने से 'मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार' इन चारों को ही समझा जाता है। अतः इन्हें 'अन्तःकरण चतुष्टय' के नाम से जाना जाता है। कई बार 'मन' में ये चारों सम्मिलित समझे जाते हैं। सामान्य रूप में 'मन' तो संकल्प-विकल्प करने वाला माना जाता है। हमको यह काम अवश्य करना है - यह दृढ़ निश्चय संकल्प है। जब हमारे निश्चय की स्थिति में द्विविधा है, अनिश्चय है, करें या न करें, यह स्थिति है, तो इसे विकल्प कहते हैं। इस स्थिति में मन की स्थिति डाँवाडोल रहती है। निश्चयात्मक निर्णय संकल्प कहलाता है। हमारे संकल्प शिव, कल्याणकारी होने चाहिए। शिव संकल्प के छः मंत्र स्वामी दयानन्द जी ने शयन से पूर्व प्रार्थना के रूप में संकलित किये हैं। इन मन्त्रों में प्रथम मंत्र पर यहां स्वाध्याय प्रस्तुत है -

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तद् सुप्तस्य तथैवैति ।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

यजु० ३४-१

मंत्र के स्वाध्याय के लिए इसके निम्न खण्ड बना लेते हैं -

(१) यद् दैवं मनः जाग्रतः दूरम् उद् ऐति ।

(२) तद् (दैवं मनः) उ सुप्तस्य तथा एव एति ।

(३) (तद् दैवं मनः दूरं गमं (सत्) ज्योतिषां एकं ज्योतिः (अस्ति)

(४) तद् मे दैवं मनः शिव संकल्पम् अस्तु

इन खण्डों में निम्न बिन्दु अधिक चिन्तन के अधिकारी हैं -

(१) हमारा मन दैव है - देवे भवं अथवा देवस्य इदम् जो देव गुणों, दिव्यगुणों वाला हो।

(२) हमारा मन ज्योतिषां ज्योतिः है-ज्योतिष्मानों की ज्योति, प्रकाशकों का प्रकाशक है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ ज्योतिष्मान् हैं, इन्हें ज्योति मन देता है।

(३) मंत्र में प्रार्थना है कि हमारा मन शिव संकल्पों वाला हो, अर्थात् हमारे संकल्प हमारे अपने लिए और सारे संसार के लिए कल्याणकारी हों।

संकल्प की महिमा - कृती मनुष्य के जीवन में संकल्प की बड़ी महिमा है। पौराणिक कथानकों में 'कल्पवृक्ष' की चर्चा आती है। कहा जाता है कि स्वर्ग में एक 'कल्पवृक्ष' है। इस वृक्ष की छाया में कोई व्यक्ति जो भी कामना करेगा, उसकी वह कामना उसी क्षण पूर्ण हो जाती है। ऐसा वृक्ष तो संसार में है नहीं, किन्तु परमदयालु प्रभु ने प्रत्येक व्यक्ति को 'संकल्प-वृक्ष' अवश्य दिया है। चाहे स्त्री हो या पुरुष, धनी हो या निर्धन, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने सबको संकल्प-वृक्ष अवश्य दिया है। सत्यनिष्ठा से संकल्प-वृक्ष की छाया में जो भी रहेगा, अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए सचेष्ट रहेगा, उसका संकल्प पूर्ण होगा।

संकल्प में सम् + कृप् सामर्थ्य धातु है। अच्छी तरह अपने सामर्थ्यों को उचित दिशा में प्रयोग करना ही संकल्प का प्रथम चरण है। शेखचिल्ली बनना, मनमोदक उड़ाना, संकल्प नहीं है। संकल्प के लिए अपेक्षित है कि हमारा उद्देश्य, कर्तव्य, एवं करणीय भलीभांति निश्चित किया हुआ हो और प्रयासपूर्वक हम अपने करणीय को पूर्ण करने के उपकरणों साधनों को संग्रह करें और उन्हें विधिपूर्वक काम में लगावें और करणीय कर्तव्य को पूर्णतः सम्पादित करें।

इस कार्य सम्पादन का एक पुराना सूत्र है -

**'यन्मनसा मनुते तद् वाचा वदति,
यद् वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,
यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते ॥'**

किसी कार्य का सम्पादन, चाहे जीवन हो या व्यवसाय या और कुछ, सबका मूल, सबकी जड़ मन के मनन में ही निहित होती है। मन की दृढ़ता वाणी में आ जाती है, और मन का संकल्प वाणी में उतर कर कर्म में रूपायित हो जाता है। एक ऐतिहासिक कथा सुनी जाती है। एक राजा था (शायद, रामसिंह नाम था), बड़ा बहादुर प्रसिद्ध विजेता था। आस-पास के राज्यों को जीतता हुआ पश्चिम की ओर बढ़ रहा था। सिन्धु नदी पार करके पश्चिम जाना चाहता था। किन्तु सिन्धु की विस्तृत धारा देखकर मन में दुविधा आने लगी, मन आगा-पीछा करने लगा। सेना को सिन्धु नदी के तट पर पड़ाव डालने का आदेश देकर एक हरकारा माता के परामर्श के लिए भेज दिया। माता थी बहादुर उत्साही, संकल्पों की दृढ़। माता ने उत्तर में एक पत्र लिख भेजा -

'सबै भूमि गोपाल की, तामें अटक कहाँ ?

जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा ।'

सारी भूमि, सम्पूर्ण पृथ्वी, सब कुछ तो परमेश्वर का ही है। उसमें अटक-बाधा-रूकावट कहीं है ही नहीं। बाधा तो मनुष्य के मन में रहती है। रुकता वही है, बाधा उसी के मार्ग में आती है, जिसके मन में बाधा है, जिसके मन में अटक है, अन्यथा रूकावट कहीं नहीं है। अटक सिन्धु नदी का भी नाम है। अर्थात् सिन्धु की बाधा केवल तुम्हारे मन में है।

यह सन्देश लेकर दूत जब रामसिंह के डेरे पर पहुंचा, रामसिंह भोजन कर रहे थे। मां का रुक्का पढ़ा, हृदय में पौरुष जाग आया। रामसिंह ने भोजन छोड़ दिया। वह उठा, घोड़े पर सवार हुआ, सैनिकों को आदेश दिया - जिसे डूबने मरने का डर हो, वह लौट जाये। जो हमारे साथ आना चाहते हैं, आ जायें।

रामसिंह घोड़े की नंगी पीठ पर जा बैठा । घोड़े ने सिन्धु की विशाल धारा में छलांग लगा दी । देखते-देखते सारी सेना सिन्धु के पार पहुंच गई और विजेता रामसिंह काबुल तक विजय करके लौटे । सही सूत्र है -

‘मन के हारे हार है, मन के जीते जीत’ मन में से अटक की अटक, मन की बाधा-अटक, बाधा निकल गई तो अब कहीं कोई रुकावट (अटक) नहीं रह गई ।

अब मंत्र के एक-एक खण्ड पर विचार करते हैं -

(१) यज्जाग्रतः दैवं मनः दूरम् उदैति (उत् + आ + एति) -

जागते हुए पुरुष का जो दैव मन दूर जा पहुंचता है । परमेश्वर ने मनुष्य के शरीर को देवपुरी बनाया है -

‘अष्टाचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या’ अथ० १०-२-३१

यह शरीर आठ चक्रों वाला, देवपुरी और अयोध्या है । स्वाभाविक है कि देवपुरी में देव बसें, सो, हमारा मन भी दैव है । दैवं देवस्येदम्, जो देव का हो वह दैव । ऋषि ने मनुष्य के आत्मा को भी देव कहा है और मन आत्मा का महत्वपूर्ण सहायक है, अतः दैव है । मानव जीवन में जो भी शुभ-अशुभ उपलब्धियां हैं, उनमें मन की भूमिका अति महत्वपूर्ण है । पाप या पुण्य का विचार मन में ही उदय होता है । श्रीकृष्ण कहते हैं -

‘इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।

एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥’ गीता ३-४०

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादो नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान विज्ञान नाशनम् ॥ गीता ३-४१

पाप का उदय कामनाओं से होता है । इन्द्रियां मन बुद्धि इसके निवास के स्थान हैं । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि इसका संयम इन्द्रिय संयम से आरम्भ होता है । इन्द्रियों को संयम में रखकर मन को पुण्य कार्यों में संलग्न करें तो मन दैव मन बन जाता है । यदि पाप कर्म में मन लगेगा तो शैतान, राक्षस हो जायेगा । एक कथा सुनते हैं -

एक समुद्र के किनारे पहाड़ था । धरती और पहाड़ के बीच में पतली सी जलधारा थी । इसी धारा में होकर नाविक अपनी नावें निकाल कर आते-जाते थे । धारा के बीच एक नोकीली चट्टान थी । जब पानी अधिक होता, ज्वार का समय होता तो चट्टान पानी में छिप जाती और नाविक उसे जान न पाते। छिपी चट्टान से टकराने से नावों की पेंदी फट जाती, पानी भर जाता और नाव डूब जाती । बड़ी भयानक, मारान्तक थी वह चट्टान । एक दिन एक सन्त साधु ने देखा कि वहां पानी कम है और हत्यारी चट्टान दिखायी पड़ रही है । उसने एक तार में एक घंटी बांधकर चट्टान में बांध दी । ज्वार आने पर लहरों के थपेड़ों में घंटी बजती और नाविक हत्यारी चट्टान को बचाकर निकल जाते, सन्त को दुआ देते। एक दिन एक शैतान लुटेरा उधर से निकला । उसने घंटी को देखा, सन्त को गालियां दीं और घंटी काट दी । घंटी तो समुद्र में डूब गयी और नाविकों की सुरक्षा का सहारा भी टूट गया । लुटेरे के मन के शैतान ने भारी पाप करा दिया । लुटेरा लूट कर लौटा तो ज्वार था, समुद्र का पानी ऊपर चढ़ा था, हत्यारी चट्टान लापता थी । लुटेरे को पाप का फल मिल गया । नाव चट्टान में टकरायी और डूब गयी, लुटेरा

भी डूब मरा। मन शैतान बन गया तो आप भी डूबा और दूसरों को डुबाने का रास्ता बना गया। सो पाप का आक्रमण हुआ तो पहले पाप ने मन पर अधिकार किया। जब मन पापी हो गया तो सब सत्यानाश, अपना भी नाश और दूसरों का नाश हो जाता है।

प्रस्तुत मन्त्र में दैव मन की प्रार्थना है। अब विचारणीय यह है कि मन दैव भी बनता है और शैतान भी। अब सोचना यह है कि क्या करें कि मन दैव बने, शैतान न बने ?

दैव मन की साधना - मन भौतिक है। इसका उपादान ही भौतिक है।

सांख्य दर्शन के अनुसार -

‘सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतमन्त्राण्युभयमिन्द्रियं मनः पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि...।’ सांख्य १-६१

अर्थात् - सत्त्व, रज, तम का संघात प्रकृति है। प्रकृति से महत्तत्त्व, उससे अहंकार, उससे पञ्चतन्मात्र, उन पञ्चतन्मात्राओं से पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और ग्यारहवां मन बना है। सो मन है भौतिक उपादानवाला। चालू कहावत है - ‘जैसा खाय अन्न, वैसा बने मन’ - सो, दैव मन बनाने के लिए खाद्य सात्विक होना चाहिए। हम विचार कर रहे थे कि मन को कैसे सात्विक बनावें। केवल भौतिक खाद्य ही नहीं, बौद्धिक और आध्यात्मिक खाद्य भी सात्विक होने चाहिए। मन है बुद्धि का साथी। अतः बौद्धिक खाद्य Intellectual in take भी सात्विक होना चाहिए। हम साहित्य पढ़ते हैं, कथा, उपन्यास, नाटक, कविता, इत्यादि-इत्यादि पढ़ते हैं। वेदशास्त्र, गीता, रामायण आदि भी कोई-कोई पढ़ते हैं। हम श्रृंगारिकता, कामुकता, तामसिकता, राजसिकता आदि से पृथक होकर पाठ, पूजन, यज्ञ, भजन-कीर्तन, आध्यात्मिक स्वाध्याय आदि से मन को सात्विक दैव बना सकते हैं। भौतिक मन अभौतिक साधनों से भी प्रभावित होता है। विचार-चिन्तन मनन आदि आन्तरिक हैं, अभौतिक है, किन्तु इनका प्रभाव भौतिक मन, इन्द्रियों और शरीर पर गहराई से पड़ता है। पाप चिन्तन का प्रभाव पापी और पुण्य चिन्तन का प्रभाव अच्छा होता है।

यह दैव मन ‘जाग्रतः दूरं उदेति’ जागरित अवस्था में दूर जा पहुंचता है। यह दैशिक गमन नहीं है। यह स्मृति-धृति का विषय है। हम बैठे हैं अपने घर में, अपने बिस्तर पर, किन्तु हमारा मन स्मृति, वृत्ति का सहारा लेकर दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, गंगोत्री, बदरीनाथ या फिर लन्दन, न्यूयार्क, संसार में जो भी हमारी स्मृति में संचित है, वहां मन पहुंच जाता है। कभी गंगोत्री की रमणीयता, कभी पुण्यदर्शन, कभी पापपंकिल दृश्य, इसके पीछे अवचेतन में निहित संस्कार ही समझ में आते हैं। यह मन की देशगत दूरी नहीं, अपितु संस्कारगत दूरी स्मृति में रहती है। इन्द्रियां मन को और मन आत्मचैतन्य से संपृक्त होकर किसी भी पदार्थ का संज्ञान करते हैं। सो, मन को दैव-सात्विक बनाने का यत्न करना चाहिए।

अब द्वितीय खण्ड है -

(२) तदु सुप्तस्य तथैवति - यह सुप्त-सोये हुए का भी वैसे ही दूर-दूर भाग जाता है। यहां सुप्त का भाव स्वप्न है, सुषुप्ति नहीं। सुषुप्ति में मन दूर समीप कहीं नहीं भागता, सुषुप्ति में तो मन निर्विषय होकर आत्मस्थ हो जाता है। जागते हुए का मन तो दूर स्मृति धृति के संचित संस्कारों में भागता है। किन्तु सोये हुए का मन कुछ उड़न्तू हो जाता है। प्रश्नोपनिषद् में बड़ा अच्छा विवेचन है - (प्रश्नो० ४-५ में द्रष्टव्य) **‘देशदिगन्तरैश्च**

प्रत्यनु भूतं पुनः-पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतंचाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतंच सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ।'

इसका भाव यह है कि जाग्रत अवस्था में जो देखा सुना है उसे तो पुनः-पुनः देखता ही है । किन्तु जो नहीं देखा है, नहीं सुना है, सत्य, असत्य, सब कुछ संस्कारवश कल्पना प्रसूत देखता है, सुनता है, अनुभव करता है । किसी ने एक व्यक्ति को ट्रेन में बैठे पुस्तक पढ़ते देखा है । हाथी को रास्ते चलते, हिरन को जंगल में दौड़ते देखा है । वह स्वप्न में दो तीन पदार्थों, क्रियाओं को उल्टापल्टी मिलाकर देख सकता है । सम्भव है स्वप्न में ट्रेन में हिरण लेटा हो और उस पर बैठकर, हिरन के ऊपर बैठा हाथी पुस्तक पढ़ रहा हो । इत्यादि ।

स्वप्न में मन सम्भव असम्भव सब कुछ अपने संस्कारों के बल से देखता है अनुभव करता है ।

अब एक सीधा सा प्रश्न है कि स्वप्न की करामातें और कई बार ये महापिशाची घृणित होती हैं । क्या यह दैवमन ही स्वप्न में भी होता है ? कहां दैवमन और कहां पिशाची स्वप्न ?

वस्तुतः मन है तो दैव ही, किन्तु, जब इस पर तामसी पिशाची आवरण चढ़ जाते हैं तो यह पिशाची तामसी संस्कारों से युक्त हो जाता है । खान-पान भी असाधारण प्रभाव डालते हैं । एक रिपोर्ट में था कि जिन कुत्तों को कच्चा मांस खिलाया जाता है, वे अधिक भयानक खूंखार हो जाते हैं । दूध पर पलने वाले कुत्ते सीधे हो जाते हैं । भोजन ही नहीं, चिन्तन - मनन, परिवेश, भजन कीर्तन, स्वाध्याय, जप, तप, संयम नियम आदि दैव मन बनाने के सहयोगी हैं ।

(३) दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम् - दूरं गमम् है ही दूरगामी । दूरगामी पर तो सोते जागते सारी परिस्थितियों पर थोड़ा विचार प्रस्तुत किया गया है । दूरगामित्व तो विषयों में भ्रमण-रमण है ही । निर्विषय होकर मन ध्यानावस्थित हो जाता है - 'ध्यानं निर्विषयं मनः' - निर्विषय होकर, विषयों का त्याग कर प्रभु का चिन्तन ही तो ध्यान है । हम ऊपर लिख चुके हैं कि भीतर के चिन्तन मनन का बाहर शरीर के अंगों पर और बाहर की क्रियाओं का भीतर मन बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है ।

मन दूरगामी होकर भी 'ज्योतिषां एकं ज्योतिः' है । ये ज्योतिष्मान् हमारी इन्द्रियाँ हैं । इन ज्योतिष्मानों को ज्योति प्रदान करने वाला मन है । आंख, कान, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियां तथा हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियां, सभी दशों इन्द्रियां मन के सम्पर्क से स्व-स्व कार्यों में सचेष्ट होती है । कल्पना कीजिए कि पैर में कहीं कोई कीट काट रहा है और मन कहीं और जगह अन्य विषय में संलग्न है । कीट दंश के रहते भी मन जब तक हाथ को सक्रिय नहीं करता, कीड़ा काटता रहे किन्तु हाथ से उसे हटाने नहीं जायेगा । जैसे ही त्वचा का स्पर्श ज्ञान मन को सूचित करेगा, मन हाथ को कीड़े को हटाने मारने का निर्देश देगा और हाथ कार्य में तत्पर हो जायेगा । नेत्रादि ज्योतिष्मान् हैं, ये रूप आदि विषयों के प्रकाशक हैं । किन्तु मन नेत्रादि के गुणों का भी प्रकाशक है । मन और कहीं रम रहा हो तो नेत्र खुले रहने पर भी रूप का ग्रहण नहीं होगा, नेत्र अपने विषय का प्रकाश संज्ञान नहीं करेंगे ।

मन स्वयं भी यदि स्वस्थ (स्वस्मिन् स्थितः), अपने स्वरूप में न हो तो सम्यक् उचित प्रकाश नहीं करेगा, शराबी अपने ही वमन को स्वाद से चाटता है । विषयी व्यक्ति की क्या विचित्र स्थिति होती है ।

‘जिन विषयन सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।

मानुष डारत वमन करि, श्वान स्वाद सो खात ।’

नशा करने वाले का मन अस्वस्थ होता है, वैसे ही कामुक को परछाई भी रम्भा और भयातुर को स्थाणु (दूँठ) प्रेत लगता है। ये सब अस्वस्थ मन के ही फल हैं। तभी तो नेत्रादि प्रकाशकों का प्रकाशक मन है। इस मंत्र में भी ‘ज्योतिषां ज्योतिरेकम् मनः’ कहा गया है। मन का स्वास्थ्य अन्य इन्द्रियों के स्वस्थ रहने की प्रथम शर्त है। तभी तो कहा गया है - मन के जीते हैं, मन के हारे हार। मन अस्वस्थ होगा तो सभी इन्द्रियाँ अस्वस्थ होंगी, मन के अशान्त होने पर इन्द्रियाँ अशान्त ही रहेंगी। मन ही अन्य इन्द्रियों को प्रकाश देता है, उचित अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य का मार्ग बताता है।

(४) अब चतुर्थ खण्ड है —

‘तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु’ - वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो। वह मन, वह कौन है ? (क) जो स्वयं में दैव है, (ख) जो जागते हुए दूरगामी है, (ग) सोये हुए भी दूरगामी है, (घ) जो ज्योतिष्मानों का भी ज्योति है। वह मन शिव संकल्प वाला हो।

शिव संकल्प क्या है ? संकल्प है दृढ़ निश्चय। दृढ़ निश्चय तो अच्छे भी होते हैं, बुरे भी होते हैं। अच्छाई या बुराई, इसकी परीक्षा पहचान कैसे हो ? अच्छाई से कल्याण होता है, अपना भी और संसार का भी। जिस निश्चय से कल्याण हो, मंगल हो, अच्छा हो, वह तो है ‘शिवसंकल्प’। जिससे कल्याण न हो वह है अशिव। रावण था तो दृढ़ निश्चयवाला, किन्तु, कामी था - ‘दशाननः काममयो महाद्रुमः’ उसका संकल्प सीताहरण शिव नहीं था, इससे रावण व्यक्ति का, परिवार, कुल, राष्ट्र का नाश हो गया। श्रीराम का भी संकल्प था - ‘निश्चरहीन करौ महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह’। यह शिवसंकल्प था। इससे व्यक्ति समाज देश सबका कल्याण हुआ। राम या रावण राष्ट्रपुरुष थे। उनके संकल्प का प्रभाव व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र सब पर पड़ा। यहां हम व्यक्ति की चर्चा कर रहे हैं। किसी भी व्यक्ति का प्रभाव स्वयं अपने ऊपर, समाज और राष्ट्र पर पड़ता ही है।

महत्वपूर्ण प्रश्न है कि हम शिव संकल्प वाले बने कैसे ? क्या करें, कैसे रहें कि हमारे मन में शिव संकल्प रहे ?

हमने विचार किया है कि मन को खुराक चाहिए, पोषण चाहिए। मन के पोषण की तीन दिशाएं, तीन आयाम हैं — अन्नमय भौतिक खाद्य, विचारमय बौद्धिक-वैचारिक पोषण, साधनामय आध्यात्मिक पोषण। अफीम आदि खाकर, शराब आदि पीकर, कामुक शृंगारी साहित्य का अध्ययन मनन करके, मारकाट भूतप्रेत आदि के सिनेमा देखकर शिव संकल्प का ग्रहण नहीं हो सकता। शिव संकल्प के लिए सदाचारी, सद्बिचारी, साहित्य, सच्चरित्रों का पठन-मनन धार्मिक सात्विक परिवेश वातावरण अपेक्षित होता है। मन को शिव संकल्पवाला बनाना अति उत्तम एवं हितकारी साधना है।

यह शयन से पूर्व प्रार्थना का मंत्र है। अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सुनिमय, सदाचार, परोपकार के व्रत, निश्चय हमारे संकल्पों को शिव संकल्प बनाने में सहयोग करते हैं। इससे व्यक्ति परिवार समाज और राष्ट्र सभी सुखी एवं शान्तिमय रहते हैं।

—साभार: वेद-वन्दन

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन वृत्त

अध्याय-१

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में सम्वत् १८८१ में हुआ था। पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है। इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

(गतांक से आगे)

प्रतिदिन अहमदगढ़, अनूपशहर, रामघाट, अतरौली और देश देशान्तर के पण्डित तथा संन्यासी लोग आकर उनसे शास्त्रार्थ किया करते थे परन्तु सबकी पराजय होती थी। बड़े-बड़े राजा और रईस दूर-दूर देशों के यहाँ पर उनके दर्शन को आया करते थे। प्रातःकाल से रात के ग्यारह बजे तक स्वामी जी के पास सौ-पचास मनुष्य प्रतिदिन बैठे रहते थे और अनेक प्रकार की धर्म विषयक चर्चा किया करते थे। इसी बीच में ठाकुर गोपालसिंह जी ने उनके लिए एक पृथक् कुटी बनवा दी और एक तख्त भी उसमें डलवा दिया। स्वामी जी महाराज यहाँ से रात्रि के दो बजे गंगा के किनारे से उठ जाते थे। वहाँ पर गंगा में गोता लगाकर समाधि मारकर बैठ जाते थे (यह स्थान बिल्कुल गंगातट पर था) वहाँ घण्टा भर दिन चढ़े समाधि से उठकर व्यायाम करके फिर उस कुटी में आ जाते थे। उनके आने तक मनुष्यों की भीड़भाड़ हो जाती थी, क्योंकि वह स्थान जहाँ स्वामी जी ध्यान किया करते थे यहाँ से दूर और एकान्त झाड़ी में था, इसलिए लोग उधर ही को टकटकी लगाये देखते रहते थे। जब स्वामी जी आते, धर्मचर्चा शास्त्रार्थादि आरम्भ हो जाते। इसी बीच में एक दरोगा अलफखां यहाँ आये थे। उन्होंने कुरआन के विषय में कुछ बातचीत की। स्वामी जी के आक्षेप का उत्तर दरोगा जी से कुछ न बन आया।

वेदानुकूल आचरण करने से शुद्धि- इसी समय रईस धर्मपुर जो नव मुस्लिम हैं, स्वामी जी के दर्शन को आये ! उन्होंने अपने मुसलमान होने के विषय में कहा कि क्या हम भी किसी प्रकार शुद्ध हो सकते हैं? तब स्वामी जी ने कहा कि तुम वेदानुकूल अपने आचरण करो तो अवश्यमेव हो जाओगे।

इसी फेरे में एक शास्त्रार्थ यहाँ बड़े जोर का हुआ कि जिसमें अनूपशहर निवासी पण्डित हीरावल्लभ कि जिनको ऋग्वेद तथा यजुर्वेद की दोनों संहिताएं कंठाग्र थीं और व्याकरण भी अच्छा जानते थे, सम्मिलित थे तथा अनूपशहर के दूसरे पण्डित बलकेश्वर तथा और भी दूरदेश के पण्डित इसलिए एकत्रित हुए थे कि स्वामी जी से शास्त्रार्थ मूर्तिपूजन के विषय पर करेंगे। वहाँ पण्डित हीरावल्लभ ने प्रण किया कि यदि मैं मूर्तिपूजन के शास्त्रार्थ में स्वामी जी से जीतूंगा तो पूजा करूंगा अन्यथा छोड़ दूंगा। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ- हीरावल्लभ भी संस्कृत बोलते थे। पण्डित हीरावल्लभ ने सब पण्डितों की ओर से शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। उस दिन लगभग नौ घंटे तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में पण्डित हीरावल्लभ ने सब पण्डितों के मध्य में स्वामी जी की प्रशंसा की और अपनी मूर्तियों को लेकर गंगा में पधार दिया और उच्च स्वर से कहा कि मूर्तिपूजा वेदोक्त नहीं है।

पण्डित कृष्णावल्लभ जा पुजारी मन्दिर, कर्णवास निवासी ने वर्णन किया कि एक दिन एक रानी हमारी यजमान आई हुई थी। उस दिन हम रामानुज का त्रिपुण्ड्र माथे पर लगाकर स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी ने पूछा कि आज क्या कारण है ? मैं उत्तर देने को ही था कि कहने लगे 'हम समझ गये, आज तेरे यजमान आये हैं।' फिर पूछा, 'बतलाओ क्या दान मिला।' मैं ने कहा कि गुप्त है। बोले कि अच्छा।

इसके पश्चात् कहने लगे कि अंगद शास्त्री (पीलीभीत वाले) की चिट्ठी हमारे पास आई और हमने उसका उत्तर लिखा है। अंगद शास्त्री की इस चिट्ठी के अन्त में श्लोक अंगदराम ने लिखा था, जो मुझे स्मरण है-

शेषः पातालक चास्ति स्वर्लोकं च बृहस्पतिः । पृथिव्यामङ्गदः साक्षत् चतुर्थो नैव दृश्यते ॥

सारांश यह कि अंगदराम ने बहुत-सी अपनी प्रशंसा संस्कृत में लिखी थी। स्वामी जी ने मुझसे पूछा 'क्या अंगद ऐसा ही है?' मैंने कहा कि मैंने उसको देखा नहीं तो क्या कहूँ। स्वामी जी ने कहा कि 'रंडाचार्य्यस्य का गणना' अर्थात् इसके सामने रंडाचार्य्य की क्या गिनती ! फिर उन्होंने मुझे अपनी लिखी हुई वह चिट्ठी दिखलाई जो अंगदराम के नाम लिखी थी। वह चिट्ठी संस्कृत में थी और बहुत लम्बी थी। मैंने पढ़ा और वृत्तांत तो मुझे स्मरण नहीं रहा परन्तु उसके नाम के तीन अक्षरों 'अं ग द' के आठ-आठ खण्ड करके बहुत जोरदार चिट्ठी लिखी थी और उसके अहंकार की दुर्गति की। वह सारा पत्र देखने से सम्बन्ध रखता था। बहुत उत्तम खंडन किया था। यहां स्वामी जी पांच-छः मास रहे। दो-तीन बार आये थे।

मेरे पिता नन्दकिशोर जी से स्वामी जी के निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए थे। स्वामी जी हमारे मूर्तिपूजन पर कहा - 'घंटानादेन अलम्'। उन्होंने अर्थात् मेरे पिता जी ने कहा कि ऐसा न कहो, हम इसी के प्रताप से सात हजार के स्वामी हैं। स्वामी जी ने कहा- 'एवं मा वद प्रारब्धेन कृतः' अर्थात् ऐसा मत कहो, यह इस मूर्ति ने नहीं दिया, प्रारब्ध से हुआ है। पिता जी ने कहा कि आप भी ऐसा न कहें। प्रारब्ध में लिखा है या नहीं इसका क्या पता है। स्वामी जी ने कहा कि तुम चौबारे में जा बैठो तो भी जो प्रारब्ध में होगा वह सब हो ही रहेगा।

मेरे पिता जी ने कहा कि महाराज आपका वाक्य तो सत्य (इतने में मैं बोल उठा) कि महाराज आपके वाक्य तो सत्य हैं परन्तु हमको यहीं बैठे रहने दो।

स्वामी जी बोले -मैंने जान लिया सब पुरुषों के मध्य में तू चतुर अथवा सियाना है।

'वे तो मानो बृहस्पति हैं'- अम्बादत्त शास्त्री मेरे पिता जी ने सुविख्यात पंडित अम्बादत्त अनुपशहर निवासी से पूछा कि आपका स्वामी जी से शास्त्रार्थ हुआ है, वे कैसे विद्वान् हैं ? उसने आवेश में आकर दोनों हाथ उठा कर पृथ्वी पर मारे और कहा कि भाई क्या कहूँ वह तो मानो बृहस्पति का अवतार है।

जब पंडित अम्बादत्त का अनुपशहर में स्वामी जी शास्त्रार्थ हुआ था, उस समय वह अधिक वृद्ध होने और संस्कृत बोलने का अधिक अभ्यास न होने के कारण हाँफने लगा था, श्वास चढ़ गया था। तब स्वामी जी ने कहा - 'ममाऽभ्यासः, त्वं वृद्धोऽसि, मूको भव, मया ज्ञातम्; तव समानोऽनूपशहरमध्ये पण्डितो नास्ति'। अर्थात् मेरा अभ्यास है तू वृद्ध है इसलिए सन्तोष कर मौन हो जा। मैंने जान लिया तेरे जैसा अनुपशहर में पंडित नहीं है।

क्रमशः

बैरिस्टर श्यामकृष्ण सहायजी

श्री श्यामकृष्ण सहायजी राँची के प्रतिष्ठित सहाय परिवार के थे। आप राँची के प्रसिद्ध व्यक्ति श्री बालकृष्णजी सहाय के अनुज थे। श्री श्यामकृष्ण सहायजी का जन्म अनुमानतः सन् १८७९-८० ई० में राँची में हुआ था और ८४ वर्ष की अवस्था में २ अप्रैल, सन् १९६३ ई० को उनका देहान्त हो गया।

श्री बालकृष्ण सहायजी कट्टर आर्यसमाजी थे और पं० अयोध्या प्रसादजी को आर्य समाज की ओर आकृष्ट करने में उनका बड़ा हाथ था। राँची के श्री दयाराम पोद्दार ने अपने एक लेख में लिखा है कि स्वर्गीय पं० अयोध्या प्रसादजी वैदिक रिसर्च स्कालर, बालकृष्ण सहायजी को अपना धर्म पिता मानते थे। श्री श्यामकृष्ण सहायजी की शिक्षा-दीक्षा ऐसे कट्टर निष्ठावान् आर्य समाजी बड़े भाई के अभिभावकत्व में आरम्भ हुई। श्री श्यामकृष्ण सहायजी ने आरम्भिक शिक्षा राँची में प्राप्त की और कालेज की शिक्षा के लिये वे कलकत्ता के प्रसिद्ध प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रविष्ट हुए। सन् १९०६ ई० में प्रेसीडेन्सी कालेज से बी० ए० पास करके बैरिस्टरी पढ़ने के लिये इंग्लैण्ड गये। जिस समय श्यामकृष्ण सहायजी कलकत्ता में थे, उस समय आर्य समाज कलकत्ता अपनी प्रगति में आगे बढ़ रहा था। बहुत कुछ सम्भव है कि श्री श्यामकृष्ण सहायजी उस समय कलकत्ता समाज के सम्पर्क में रहे हों। उस समय कलकत्ता समाज में पं० शंकरनाथजी, राय बहादुर रलारामजी, श्री टेकचन्दजी, श्री तुलसीदास दत्तजी का कार्यकाल था। ये सब विद्या और सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अपना उच्च स्थान रखते थे। राजा तेजनारायण सिंहजी का सन् १८९८ ई० में लण्डन में ही देहान्त हुआ था। श्री टेकचन्दजी भी लण्डन गये थे, श्री रलारामजी उच्च कोटि के इंजीनियर थे, पं० शंकरनाथजी, श्री तुलसीदास दत्तजी इत्यादि की भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः सर्वथा सम्भव है कि कलकत्ता में विद्याध्ययन के साथ श्री श्यामकृष्णजी सहाय का सम्पर्क आर्य समाज के साथ रहा हो। प्रेसीडेन्सी कालेज और आर्य समाज कलकत्ता में पैदल का भी दस मिनट का भी अन्तर नहीं है। जो भी हो, श्री श्यामकृष्ण सहायजी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा की प्रेरणा से अपने बड़े भाई श्री बालकृष्ण सहायजी की स्वीकृति से बैरिस्टरी पढ़ने के लिये लंडन गये। बड़े भाई ने उन्हें सत्यार्थ प्रकाश आदि आर्य साहित्य के अध्ययन और मद्य-मांस आदि सेवन न करने के लिये प्रतिज्ञा करवायी। इस प्रतिज्ञा का पालन श्री श्यामकृष्णजी सहाय ने जीवन भर किया। श्री श्यामकृष्णजी सहाय ने मिडिल टेम्पुल(Middle Temple) से बैरिस्टरी पास कर सन् १९०९ ई० में भारत लौटने पर कलकत्ता में ही बैरिस्टरी आरम्भ की। यह वह समय था जब विदेश यात्रा का सामाजिक दण्ड जाति बहिष्कार था। श्री श्यामकृष्णजी सहाय को भी कायस्थ जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था। किन्तु एक कट्टर आर्यसमाजी की तरह उन्होंने अपने सिद्धान्त से मुख न मोड़ा। सन् १९०९ ई० से सन् १९१२ ई० या १९१३ ई० तक आपने कलकत्ता में बैरिस्टरी की। इस बीच आप आर्यसमाज कलकत्ता के मन्त्री भी निर्वाचित हुये थे। सन् १९१३ ई० में इनके अग्रज श्री बालकृष्णजी सहाय का देहान्त हो गया और ये कलकत्ता छोड़ कर राँची में रहने लगे और वहीं वकालत करने लगे। श्री श्यामकृष्णजी सहाय का राँची का सार्वजनिक जीवन बड़ी प्रतिष्ठा का जीवन

है और वे राँची के सार्वजनिक क्षेत्र में जीवन भर उज्ज्वल नक्षत्र की तरह चमकते रहे । बहुत दिनों तक राँची आर्यसमाज के प्रधान रहे । वे राँची नगरपालिका के चेयरमैन रहे । कुछ दिनों तक बिहार, उड़ीसा कौन्सिल के भी सदस्य रहे, राँची लॉ कालेज के संस्थापक प्रिन्सिपल थे, बहुमुखी दिशाओं में एक उज्ज्वल नक्षत्र की तरह चमकते हुए श्री श्यामकृष्ण सहाय जी अपने ८४ वर्षों के सुदीर्घ जीवन काल में सदा आर्यसमाज के निष्ठावान कार्यकर्ता की हैसियत से जीवन बिताते रहे ।

—आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से

(पृष्ठ २ का शेषांश)

अभिनन्दन पत्र श्री लाजपत राय जी अग्रवाल को समर्पित किया गया । इस अवसर पर उनकी पुत्री श्रीमती श्वेता अग्रवाल तथा दामाद श्री अतुल आर्य जी भी उपस्थित थे । आदरणीय श्री लाजपत राय जी अग्रवाल द्वारा किये गये निर्भीक साहित्य प्रकाशन की वक्ताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की । विभिन्न आर्य समाजों के प्रतिनिधियों ने भी माल्यार्पण द्वारा आपका अभिनन्दन किया ।

शनिवार २९ दिसम्बर २०१८ को सायं ७ बजे से ८ बजे के मध्य आर्य समाज बड़ाबाजार के पूर्व प्रधान, लेखक एवं कवि श्री खुशहाल चन्द्र आर्य जी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया । इस अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता द्वारा शाल ,चन्दन, प्रशस्ति पत्र एवं राशि द्वारा सम्मानित किया गया । आर्यसमाज कलकत्ता के अतिरिक्त आर्यसमाज बड़ाबाजार, आर्यसमाज हावड़ा तथा उपनगरीय क्षेत्रों से पधारे आर्यसमाज के प्रतिनिधियों ने श्री खुशहाल चन्द्र आर्य जी को सम्मानित किया । इस अवसर पर उनके परिवार के सदस्य, पुत्र, पुत्र बधुएँ, पुत्री व अन्य पारिवारिकगण व सम्बन्धी उपस्थित थे जिनके द्वारा श्री आर्य जी का सम्मान किया गया । श्री खुशहाल चन्द्र जी आर्य ने प्राप्त राशि में पाँच हजार रुपये अतिरिक्त मिलाकर आर्यसमाज कलकत्ता को दान स्वरूप प्रदान किया ।

दिनांक ३० दिसम्बर २०१८ को उत्सव के अन्तिम दिवस पर नव दिवसीय अथर्ववेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति सम्पन्न हुयी । तत्पश्चात् कोलकाता की समस्त समाजों का सामूहिक सत्संग एवं ऋषि लंगर का आयोजन हुआ । गुरुकुल ललुआ गेड़िया की ब्रह्मचारिणियों द्वारा व्यायाम व शौर्य प्रदर्शन किया गया । अन्त में मन्त्री श्री मदनलाल सेठ जी ने अपने समस्त सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद ज्ञापित किया ।

मन्त्री-

मदनलाल सेठ

सत्यार्थ प्रकाश काव्य सुधा

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का काव्यानुवाद

— पं० देवनारायण तिवारी 'निर्भीक'

मो० : 9830420496

द्वितीय समुल्लासारम्भः

(२)

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

(उपक्रमणिका)

कारण कि शिक्षा है नहीं उस भांति जैसी चाहिए ।
जब संस्कार विहीन हैं तब किस तरह समझाइए ॥
शिक्षा प्रणाली भी प्रदूषित - सी हुई तज शास्त्र को ।
व्यवसाय विद्या बन गई है, लूटते सब छात्र को ॥ १२॥

सद्ज्ञान शास्त्र विलुप्त से हैं आधुनिक परिवेश में ।
आदर्श ऋषियों का दबा है, पश्चिमी परिवेश में ॥
गंदी काथाएं काल्पनिक अश्लीलता से जो भरीं-
उनको पढ़ाते पाठ्यक्रम में, संस्कृति अपनी मरी ॥१३॥

अब कपिल और कणाद गौतम आदि ऋषि विस्मृत हुए ।
सद्शास्त्र विद्या-कोष के, मानों सभी हैं मृत हुए ॥
जो कुछ विदेशी जन कहें उनका कहा सब ठीक है ।
“इस देश का सिद्धान्त सारा झूठ और अलीक है ॥१४॥”

ऐसे विचारों से प्रदूषित हैं बहुत विद्वान् भी ।
औ भ्रमित उनकी छत्रछाया में पड़े मतिमान भी ॥
प्रेरक काथाएं, सत्य सारे तथ्य जो इतिहास हैं ।
उनको दबाते मूढ़ जन कहते कि यह बकवास हैं ॥१५॥

अस्तित्व रखकर ताख पर, इस देश के इतिहास का ।
सब पृष्ठ पोषण में लगे, गौरव तजे निज वास का ।
गत काल के डाकू लुटेरे अब बने आदर्श हैं ।
उनको महान् बता पढ़ाते, कुमति बुद्धि सहर्ष हैं ॥१६॥

करते प्रयोजन सिद्ध अपना भूल जन उपकार को ।
बहु जन कृतघ्न बने हुए हैं, छोड़ सद्व्यवहार को ॥
रक्खो सभी को मूढ़ मति उठने न पायें जन यहाँ ।
उल्लू करो सीधा निजी, भक्खर में जायें जन यहाँ ॥१७॥

सब भांति दुर्बल-हीन करके फूट डालो देश में ॥
लूटो और धन घर भरो, रहकर सुभूषित वेश में ॥
इस भांति के व्यवहार से यह देश भारत त्रस्त था ।
अज्ञान-अत्याचार से जन-जन यहाँ का त्रस्त था ॥१८॥

यद्यपि अभी भी देश में वह कालिमा प्रति ठौर है ।
पाखण्ड, मिथ्याज्ञान, आडम्बर बढ़ा कुछ और है ।
पर तर्क की ताकत बढ़ी है, शक्ति जागी है नई ।
उदबुद्ध जन-जन हो गया है, मूर्खता बहु मिट गई ॥१९॥

वैसो न भारत रह गया, जिस भांति था उस काल में ॥
नव बाहुबल जागा सभी में, ज्ञान आया गाल में ॥
ऋषिराज ने ऐसा जगाया, मृतक सम जो देश था ।
नव प्राण का संचार व्यापा, जो मुमूर्षित वेश था ॥२०॥

अब वह न कायरता रही, भागीं विषमतायें सभी ।
बहुकुप्रथाएं मिट गईं, अवसन्नता भागीं सभी ॥
पर बहुत-सी हैं न्यूनतायें भी अभी इस जाति में ।
मिटना बहुत अनिवार्य है, जो है कलङ्क प्रकाश में ॥२१॥

क्रमशः

आर्य समाज : आन्दोलन की दिशा

—पं० योगेश्वरराज उपाध्याय

आर्य समाज कलकत्ता स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई थी। अभा-अभी आर्य समाज कलकत्ता ने अपना १३३वाँ वार्षिकोत्सव स्थानीय हर्षिकेश पार्क में बड़े उत्साह और धूमधाम से मनाया। इस अवसर पर गर्व का बोध बहुत स्वाभाविक है। परन्तु किसी भी महान संगठन का यह लक्षण है कि आगे बढ़ते बढ़ते बीच बीच में पीछे मुड़कर किये गए कार्यों की समीक्षा करे और साथ ही साथ भविष्य की चुनौतियों से जूझने के लिए अपनी दिशा का निर्धारण भी करे।

१९वीं शताब्दी का उत्तरार्ध भारत में नव-जागरण के आन्दोलनों का समय था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि कई सामाजिक सुधार और जनजागरण की अलख जगाने वाले आन्दोलनों ने समाज को प्रभावित किया। बंगाल में ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने इन आन्दोलनों का सूत्रपात किया और किसी हद तक सफल भी हुए। उन्होंने स्त्रियों की दशा सुधारने, सती प्रथा आदि रोकने का प्रशंसनीय कार्य किया। ब्रह्म समाज की निर्बलता यह थी कि राजा राममोहन राय अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी भाषा को भारतवर्ष की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। इसका फल यह हुआ कि ब्रह्म समाज का प्रभाव विशेषकर बंगाल के उच्च शिक्षित वर्ग में बढ़ा किन्तु यह आन्दोलन भारत की साधारण जनता की मानसिकता को अपने प्रभाव में न ले सका क्योंकि इसका प्रेरक तत्व विदेशी था।

ब्रह्म समाज के कुछ वर्षों के पश्चात् सन् १८७५ ई० में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मुंबई में आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी दयानन्द और आर्य समाज की चिंतनधारा वेद, शास्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, भगवान् श्री राम, योगेश्वर श्रीकृष्ण आदि भारतीय ऐतिहासिक विरासत का प्रचार करने लगी। आर्य समाज सुधार की वाणी बोलता था किन्तु इसकी कार्यशैली में बहु-आयामी तथा बहुमुखी क्रांति का शंखनाद था। यह वैचारिक क्रांति दैवी ज्वाला की तरह भारतवर्ष में तथा भारतवर्ष के बाहर यूरोप, अमेरिका, कनाडा, अरब, अफ्रीका आदि में फैल गयी। अमेरिका के प्रसिद्ध विचारक डॉ० एंड्रयू जैक्सन डेविस ने कहा है- “मैं एक ऐसी अग्नि को देखता हूँ जो सर्वव्यापक है, वह अप्रमेय प्रेम की अग्नि है, जो सर्वविद्वेष को भस्मसात् करने के लिए प्रज्वलित हो रही है। वाग्मियों, कवियों और पवित्र पुस्तक-प्रणेताओं के मनोभावों के रूप में उसकी लपकती ज्वालायें यत्र-तत्र दृष्टिगोचर हो रही हैं। आर्य समाज नामक अग्निकुण्ड में यह अग्नि प्रकट हुयी है। ईश्वर के प्रकाश से ज्योति प्राप्त करने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती के हृदय में यह अग्नि प्रादुर्भूत और प्रज्वलित हुयी थी। हिन्दू मुसलमान और ईसाई, सब इस अग्नि को बुझाने के लिए दौड़े किन्तु यह स्वर्गीय अग्नि भारतवर्ष में और भारतवर्ष के बाहर भी बढ़ती और फैलती ही गयी।” उस समय भारतवर्ष में म्यांमार (बर्मा), सिंगापुर, इंडोनेशिया आदि सबमें यह सुधार की ज्वाला फैल गई। इस

समय संसार के प्रायः सभी देशों में और प्रमुख शहरों में आर्य समाज का संगठन कार्य कर रहा है।

अफ्रीका के कई देशों में, टापुओं में, मॉरिशस, फिजी, गुयाना, केन्या आदि में जहाँ भारतीय मूल के लोग बसे हैं, वहाँ आर्य समाज अत्यंत प्रभावपूर्ण, धार्मिक और सामाजिक कार्य कर रहा है। आर्य समाज के प्रभाव में इस्लामी जगत भी इतनी निष्ठा से सम्मिलित हुआ था कि खलीफाओं के देश के प्रसिद्ध नगर बगदाद के आर्य समाज ने उस समय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली को एक हजार रुपये सहयोग में दिया था जिसका मूल्य आज के दिन लाखों का होगा और इन्हीं रुपयों से सार्वदेशिक सभा ने सन् १९२४ ई० में “**आर्य पर्व-पद्धति**” पुस्तक छापी थी। यह तो अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति ने ईसाई और मुसलमान को आर्य समाज का विशेष विरोधी बना दिया।

आर्य समाज के कार्य बहुमुखी रहे हैं। समाज सुधार, छुआ-छूत को मिटाना, जातिगत, जन्मना उंच-नीच के भाव को मिटाना, बाल-विवाह रोकना, विधवा विवाह को प्रोत्साहन देना, कन्याओं के लिए स्कूल, कॉलेज, गुरुकुल खोलना, अछूतों, जनजातियों आदि सभी पिछड़े हुए वर्गों को बिना किसी भेदभाव के स्कूल, कॉलेज और गुरुकुलों में स्थान देना, वेद-वेदांग आदि के अध्यापन के लिए गुरुकुल खोलना, आदि सब आर्य समाज के प्रोग्राम में हैं। आर्य समाज ने ग्रियमान हिन्दू जाति को संजीवनी बूटी पिला दी। आर्य समाज से पहले ईसाई मिशनरी और इस्लामिक प्रचारक हिन्दू देवी-देवताओं की खुलेआम भर्त्सना करते थे और हिन्दुओं को बिना किसी बाधा के धर्मान्तरित कर रहे थे। स्वामी दयानन्द और आर्य समाज के प्रचारक हिन्दुओं की रक्षा तो करने ही लगे, साथ ही अन्य मतावलंबियों को पुनः हिन्दू भी बनाने लगे। उस समय आर्य समाज का साधारण से साधारण अनुयायी भी महर्षि दयानन्द का कालजयी ग्रन्थ “**सत्यार्थ प्रकाश**” हाथ में लिए, जनमानस में अग्निपिण्ड की तरह दहक रहा था।

आर्य समाज का विरोध : आर्य समाज के विरोध में कट्टरपंथी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी टूट पड़े। आर्य समाज अंग्रेजी शासन, अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा, अंग्रेजी सभ्यता-संस्कृति, सबका विरोध करता था। अतः सबसे पहले अंग्रेजी सरकार ने आर्य समाज को दबाने का प्रयास किया। शासन की ओर से कई जगह कई अभियोग चलाये गए किन्तु सर्वत्र आर्य समाज विजयी रहा। आर्य समाज ने कई धार्मिक युद्ध किये। निजाम हैदराबाद के शासक ने हिन्दुओं पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये थे और अनेक प्रकार से हिन्दुओं को वहाँ पीड़ित किया जाता था। १९३७ में आर्य समाज ने निजाम के विरुद्ध सत्याग्रह किया और कई सत्याग्रहियों के बलिदान के पश्चात् निजाम सरकार ने घुटने टेक दिए और निजाम हैदराबाद के राज्य में हिन्दुओं को धार्मिक अधिकार प्राप्त हुए। इस विजय से आर्य समाज की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। १९४७ की स्वतंत्रता के समय सिंध प्रान्त में मुस्लिम लीगी सरकार थी। उसने स्वामी दयानन्द के महान् ग्रन्थ “**सत्यार्थ प्रकाश**” पर प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की। इस पर

आर्य समाज ने सिंध सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करने का निश्चय किया। इससे सिंध की लीगी सरकार घबरा उठी और उसने प्रतिबन्ध का आदेश वापस ले लिया। इससे भी आर्य समाज का गौरव बढ़ गया। स्वतंत्र भारत में नेहरू जी की प्रेरणा से पंजाब में कैरों सरकार ने हिन्दी भाषा के विरुद्ध प्रतिबन्ध लगाया और आर्य समाज ने हिन्दी-रक्षा आन्दोलन छोड़कर सत्याग्रह किया। इसमें भी आर्य समाज सफल रहा। ये सब बाहरी विरोध थे। इन्हें आर्य समाज ने बड़े उत्साह से दबा दिया।

कांग्रेस के प्रसिद्ध इतिहासकार लेखक श्री पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कांग्रेस में लगभग ८०% लोग आर्य समाज से प्रभावित थे। उस समय देश को प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें बनाने के लिए तपे-तपाये ईमानदार देश-सेवक नेताओं की आवश्यकता थी। इस प्रशासनिक आवश्यकता ने आर्य समाज के प्रथम कोटि के बहुत सारे नेताओं को सरकार में ले लिया। इतनी बड़ी संख्या में प्रथम कोटि के कार्यकर्ताओं का शासन द्वारा आत्मसात किये जाने से आर्य समाज के संगठन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

आर्य समाज के कार्यकर्ताओं का देश में बड़ा सम्मान था। न्यायालय भी कई बार आर्य समाजियों की सच्चाई, ईमानदारी पर मुहर लगा देते थे। इस सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रलोभन में कई नकली दिखावटी नेता आर्य समाज के नेतृत्व में घुस आये। आर्य समाज अत्यन्त जनतांत्रिक संगठन है और ये नकली आर्य समाजी आर्य समाज के संगठन पर हावी होकर अधिकार में आ गए। इसने आर्य समाज के तेज को धूमिल किया। दलबन्दी की दलदल में आर्य समाज का संगठन भी फँसा। सेवा करने की जगह मेवा-भोगी कार्यकर्ता-नेता कुर्सी से चिपक कर संगठन को अपने निजी स्वार्थों में, निजी प्रतिष्ठा में भुनाने लगते हैं। सबसे बढ़कर प्रखर तेजस्वी नेतृत्व का अभाव आर्य समाज रुपी अंगारे पर राख चढ़ा रहा है।

इतनी सारी प्रतिकूल परिस्थितियों के रहने पर भी एक स्वर्णिम किरण सी यह आशा दिखती है कि आर्य समाज संगठन ऋषि दयानन्द और उनके सिद्धांतों के प्रति ईमानदारी से निष्ठावान है। आर्य समाज का आन्दोलन जिन मुद्दों और कुरीतियों के विरोध में आगे आया था उनमें से मूर्ति-पूजा की कुरीति को छोड़कर अन्य सारे मोर्चों पर कमोबेश बहुत सफलता मिली है और वृहत्तर हिन्दू और भारतीय समाज अपने-अपने ढंग से इन परिवर्तनों को आत्मसात कर चुका है। स्त्री-शिक्षा, जन्मना जाति-प्रथा, विधर्मियों की वैदिक हिन्दू धर्म में सुगम वापसी, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, अंतर्देशीय विवाह, छुआछूत का विरोध, इत्यादि बहुत सारे ऐसे मुद्दे हैं जो आज का समाज खुले मन से न केवल स्वीकार कर रहा है अपितु इन सब को बढ़ावा भी दे रहा है।

काल-प्रवाह की यह विशेषता है कि यह सतत नवीन चुनौतियां पेश करता है। महर्षि दयानन्द ने १४४ वर्ष पूर्व जो सोच और दिशा समाज को दी, आज का समय किसी सीमा तक बहुत बदल गया है। नयी चुनौतियां, नयी परिस्थितियाँ, नए आयाम अपने आप में नए समाधान माँगते हैं। महर्षि दयानन्द की दृष्ट कालजयी है किन्तु उनके समाधान अपने युग के अनुरूप थे। आज डेढ़ सौ वर्षों बाद की

चुनौतियां आर्य समाज को ललकार रही है। मूल विचार को दृढ़ता से धारण करके भी बदलते युग के बदलते माहौल में बदले तेवर की आवश्यकता है। शिक्षा व्यवस्था रोजगारोन्मूलक हो, शिक्षा का माध्यम भारतीय मातृभाषा हो, टूटते पारिवारिक मूल्यों की पुनर्स्थापना हो, बेसहारा बुजुर्गों के लिए आश्रयों-आश्रमों का निर्माण हो (प्रचीन वानप्रस्थ परम्परा का आधुनिक रूप) जहाँ वे समाज को अपने अनुभव और समय का लाभ दे सकें, अनाथालयों का निर्माण और सुचारू प्रबन्धन हो, औद्योगिक विद्यालयों की स्थापना और उन्नति, बहुत सारे ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ आज आर्य समाज अपनी ऊर्जा और क्षमता का सार्थक निवेश कर सकता है।

राजनीति की दशा और दिशा को समानधर्मी और सहयोगी संस्थाओं और आन्दोलनों के साथ मिलकर निर्णायक रूप से प्रभावित करना आज अपरिहार्य है। इस दिशा में आर्य समाज बहुत कुछ कर सकता है।

आर्य समाज के सामने आज चुनौतियां हैं जिन्हें अवसर में बदलने की आवश्यकता है। अपनी तार्किक धारदार वैचारिक तेजस्विता के सदुपयोग का आज की परिस्थितियों में अच्छा अवकाश है। देश हित के खिलाफ चल रहे बौद्धिक और वैचारिक प्रचार का प्रभावी प्रतिकार करने में आर्य समाज सक्षम है और संगठन के रूप में इस चुनौती को स्वीकार कर देश और समाज को दिशा देने के लिए समाज का एक बड़ा वर्ग आशाभरी निगाहों से आर्य समाज की ओर देख रहा है।

वैदिक उपदेशक विद्यालय, लखनऊ

के छः मास पूर्ण

१४ दिसम्बर, २०१८ को वैदिक उपदेशक विद्यालय, लखनऊ, के छः मास पूर्ण होने के उपलक्ष्य में बृहद् यज्ञ किया गया। विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी क्षमतानुसार वैयाकरण, दर्शनवित, यज्ञाचार्य, वेदज्ञ एवं मोक्षाधिकारी बनने के संकल्प व्यक्त किये। प्राचार्य रूपचन्द्र 'दीपक' ने सबको नियमित अध्ययन एवं सन्ध्या करने की प्रेरणा दी। विद्यालय में १५ वर्ष से कम आयु के ३ बालक और ३५ वर्ष से अधिक के १० विद्यार्थी हैं।

सम्पर्क सूत्र - ७३७६९८७९३१

प्राचार्य - ९८३९१८१६९०

प्रबोध आर्य

(सचिव)

वर्तमान में आर्य समाज द्वारा कुरीतियों के खण्डन संघर्ष विराम के परिणाम से सबकः

— पं० उम्मेद सिंह विशारद

युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भारतवासियों की हजारों वर्षों की गुलामी के साथ-साथ चरम सीमा पर पहुँची धार्मिक, सामाजिक-राजनैतिक मान्य अन्धविश्वासों व कुरीतियों का अति साहस से निर्भक्ता से खण्डन करके भारत ही नहीं विश्व की जनता को जगाया था, और ऋत सत्य, सत्य, वेदानुकूल मान्यताओं का मंडन किया था। परिणाम स्वरूप सोये भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन से लेकर तमाम धार्मिक, सामाजिक-राजनैतिक का सुधारवादी युग प्रारम्भ हुआ।

ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने दो कार्य अति महत्वपूर्ण किये—एक अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना की जिसने करोड़ों जनता को झकझोर कर रख दिया और वैचारिक क्रान्ति का सुधार युग प्रारम्भ हुआ। दूसरा अति महान कार्य वैचारिक क्रान्ति को सदैव सदैव के लिये प्रसारित व प्रचारित करने के लिये सत्य प्रतिपादन का सूर्य रूपी आर्य समाज का गठन करके सदियों के लिये अदभुत प्रेरणा दायक कार्य करके चल दिये।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का चिन्तन

सत्यार्थ प्रकाश से:- महर्षि लिखते हैं कि जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा, तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य विशेष विद्वज्जन ईष्या, द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहे तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है ॥ (अनुभूमिका (१)।

मेरा मुख्य प्रयोजन सत्य - सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दे, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहिता समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहे। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान अनेक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़कर सर्वतंत्र सिद्धांत अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सबमें सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तावे तो जगत का पूर्ण हित होवे। (भूमिका से)

धार्मिक अन्धविश्वास व समाजिक कुरीतियों का प्रचलन कैसे हुआ

यह सिद्ध बात है कि पांच हजार वर्षों के पूर्व वेद मत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था, क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरोध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इन की अप्रवृत्ति से अविद्या अन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया। वेद विरोध सर्वप्रथम चार मुख्य मत पुराणी, जैनी, किरानी, और कुरानी सब मतों व अन्धविश्वासों के मूल है। यह सब एक पीछे दूसरा, तीसरा, चौथा चला है। (सत्यार्थ प्रकाश से)

महाभारत युद्ध में भारत की आपार हानि हुई विशेष कर वैदिक धर्म के मार्ग-दर्शक विद्वानों का नाश हुआ था, और चतुर व स्वार्थी लोगों ने वेद विरोध व ऋत सत्य के विपरीत अपने-अपने मतों की शृंखला भारत में खड़ी कर दी। और भारत की भोली-भाली जनता तो इनके जालों में फंसती चली गई। आपस में धार्मिक अन्धविश्वासों से, सामाजिक कुरीतियों और जातिवाद, छुआ-छूत, मूर्ति पूजा, व अन्य कुरीतियों के संस्कार भारत की जनता में गहरे पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कार बनते चले गये और परिणाम स्वरूप विदेशियों ने भारत को अपना गुलाम बना लिया। शोषण वृत्ति, व अनेक कुरीतियां भारत में फैल गयी थी। धार्मिक अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियों का उनमूलन आज भी नहीं हुआ है जो भारत की जनता को चारों तरफ आग की लपटों की तपस की तरह गर्मी दे रही हैं। स्वतन्त्र भारत की जनता आज अन्धविश्वासों के गहरे परतंत्र में जी रही है। वह विकट नासूर बन गये हैं।

असत्य का मंडन और सत्य के खंडन से हानियां

आर्य समाज और वैदिक विद्वानों के अतिरिक्त सम्पूर्ण जगत में असत्य का समर्थन और परोक्ष व अपरोक्ष रूप सत्य का खंडन होने से राष्ट्र की, परिवार की, व्यक्ति की, वैचारिक हत्या हो रही है इसको केवल आर्य समाज वैचारिक संगठन ही बचा सकता है।

आर्य समाज का मुख्य कार्य कुरीतियों के खण्डन विराम से समाज की हानियां

हिन्दू महासभा के संस्थापक मदन मोहन मालवीय जी ने कहा था - यदि आर्य समाज संगठन दौड़ता रहेगा तो हिन्दू समाज चलता रहेगा, यदि आर्य समाज मन्द गति से चलेगा तो हिन्दू समाज बैठ जायेगा, यदि आर्य समाज बैठ गया तो हिन्दू समाज सो जायेगा, और यदि दुर्भाग्य से आर्य समाज सो गया तो हिन्दू समाज मर जायेगा।

आज आर्य समाज अपने मूल उद्देश्य से पीछे हट रहा है, उपदेशक, भजनोपदेशक व्यवसायी हो गये हैं। मिशनरी पुरुषार्थ दिनों-दिन कम होता जा रहा है। जनता को स्वस्थ विचार जो मिलने चाहिए थे वह नहीं मिल रहे हैं। मानव बचपन से लेकर मृत्यु तक उसी मान्यता में जीवन बिता देता है जिस मत या समुदाय में उसने जन्म लिया है।

आर्य समाज अपने जन्म काल से पचास वर्षों तक तो कुरीतियों का खुले रूप से खण्डन करता रहा और सत्य विचारों पर मंडन करता रहा था। वर्तमान में यह ठीक है तरीका बदलना होगा परन्तु जो आर्य समाज का मुख्य कार्य है सत्य को सदैव जनता के सामने रखना, फिर उसी शैली को अपनाना

होगा । जनता सत्य ज्ञान की प्यासी है ।

आर्य समाज को अब जागना ही होगा और बढ़ते अन्धविश्वासों से सबक लेना होगा

महर्षि दयानन्द जी युग के सर्वश्रेष्ठ विद्वान थे, वो चाहते तो अन्यों की तरह कोई मत खड़ा कर देते और स्वयं महन्त बन जाते । पर मेरे दयानन्द ने अपना सुख नहीं देखा । उन्होंने भारत की जनता को अन्धविश्वासों से बचाने के संकल्प में स्वयं अनेकों कष्ट सहे । उनको बार-बार जहर पिलाया गया, किन्तु वह हिमालय की तरह अडिग रहे । आज आर्य समाज के लाखों कार्यकर्ता व भारत की जनता उनकी ऋणी हैं ।

आज आर्य समाज भौतिकता में दिनों-दिनों धंस रहा है । हम अपने असली उद्देश्य से भटक रहे हैं । कंकरीट के मन्दिर बनाकर इनमें सुख सुविधाओं को लगा कर हम उन्नति समझ रहे हैं । आर्य समाज का आज गठन हुए १४१ वर्ष हो गये हैं और अपने जन्म काल के पश्चात् पचास वर्षों तक आर्य श्रेष्ठों ने आर्य समाज को संसार भर में फैलाया और जनता में अपना सन्देश बहुतायत से पहुँचाया था। किन्तु हम उस काल के पश्चात पुराने आर्य समाज के योद्धाओं को ही स्मरण कर संतोष कर रहे हैं। एक प्रकार से उन्हीं को भुना रहे हैं । युग की रफ्तार देखकर हम आर्यों को प्रचार-प्रसार साहित्य में परिवर्तन समयानुकूल लाना होगा । आज आर्य समाज को आपस में सम्पत्ति विवाद, पद विवाद, अहंकार विवाद, गुट विवाद, नेतृत्व विवादों को परे धकेल कर, अपने असली उद्देश्य वेदों का प्रचार, सत्य सिद्धान्तों का मंडन और असत्य विचारों व कर्मों का खण्डन एकरूपता से करना पड़ेगा । आज आर्य समाज की स्थिति यह है कि हम अपने मंचों से भी अन्धविश्वास का खंडन करने से बचते हैं । आज आवश्यकता है कि वैदिक सिद्धान्तों की छोटी-छोटी पुस्तकें छपा कर बांटने की । जब सब सिद्धान्तिक पक्ष जनता के सामने रखेंगे तो गलत मान्यताओं का खण्डन अपने आप ही हो जायेगा और कोई भी मत वालें हम पर आक्षेप नहीं कर सकेंगे ।

मुझे पचास वर्ष हो गये हैं एक सिद्धान्तों पर प्रचार करते-करते जिससे मुझे भारी सफलता मिल रही है । मैं कथनी और करनी मे एक रूपता रखता हूँ । मेरे इस लेख को गहराई से मनन कर विचार करेंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा ।

मैं चाहता हूँ नई पीढ़ी को सत्य सिद्धान्तों का पता तो चले । अपितु वह तो जिस मत में पले बड़े हैं उन्हीं को सत्य मान कर चल रहे हैं । मेरे ७५ वर्षों के अनुभवों से जो सामने आया, वही प्रतिपादित कर रहा हूँ ।

विशेष नोट:- माननीय पाठक यह जान लें कि प्रचलित धारणाओं को निराधार सिद्ध करने का साहस अनेक पीढ़ियों में कोई-कोई ही कर सकता है, जिनमें हम इस युग में महर्षि दयानन्द को पाते हैं । बाकी करोड़ों व्यक्ति तो लकीर के फकीर होते हैं ।

गढ़ निवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड ।

मो०- ९४११५१२०१९

९५५७६४१८००

पापों से बचें

-मृदुला अग्रवाल

मनुष्य अपने सन्मुख जगद्रक्षक परमात्मा को साक्षात् जानकर “पापों से बचें” और सब प्राणी अज्ञान तथा वैर छोड़कर परस्पर मित्रवत् रहें। “पाप के त्याग से सुखलाभ होता है।” प्रत्येक मनुष्य को ऋषि, मुनि, धर्मात्माओं आदि के अनुकरण से वेदज्ञान प्राप्त करके पापों का नाश करना चाहिए। पाप को छेदने में समर्थ परमेश्वर ने वेदज्ञान दिया भी इसीलिए है।

“मनुष्य वेदज्ञान प्राप्ति से ऐसा प्रयत्न करे कि आत्मिक, शारीरिक और दैवी विपत्तियों एवं मूर्खों के दुष्ट आचरणों से पृथक् रहे तथा न कभी कोई पाप करे जिससे परमेश्वर वा राजा उसे दण्ड न देवे, किन्तु सुशीलता के कारण संसार के सब पदार्थ आनन्दकारी हो।”

—अथर्ववेद, काण्ड-२, सूक्त-१०, मन्त्र-१॥

जो विभिन्न पीड़ाओं से, ज्वर आदि रोगों से पापियों को दण्ड देता है, उस न्यायी जगदीश्वर का स्मरण करते हुए हम पापों से बच सकते हैं। जैसे, मलिन वस्त्र जल से शुद्ध होते हैं, वैसे ही पापी मनुष्य भी ब्रह्मज्ञान द्वारा पापों से छूटकर शुद्धात्मा हो जाते हैं। वे पापकर्म छोड़ने से सर्व हितकारी, विशाल समुद्र के समान गम्भीर परमेश्वर के कोप से डरकर पाप न करके, परमात्मा के उपकारों को विचार कर उपकारी बनकर जीवन भर आनन्द भोगते हैं। परमेश्वर अपने सर्वज्ञपन से पापी को उसके कर्मानुसार फल देते हैं। कुपथ पर चलने वाले पापी को दुःख और सुपथ पर चलने वाले लोगों को ईश्वर के रचे पदार्थ सुख प्रदान करते हैं।

“पाप” पृथ्वी की आकर्षक शक्ति की तरह वापस उसी व्यक्ति पर गिरता है जो पाप करता है। “अहंकार सब पापों का मूल कारण होता है।” स्वयं की प्रशंसा करना घृणा उत्पन्न करता है, जबकि विनम्र एवं मर्यादित व्यक्ति श्रद्धा का पात्र होता है एवं सबका मित्र होता है। प्रभु, एक कीड़े को, जो कि प्रभु प्रशंसा भी नहीं कर सकता, सहायता करता है-सुख देता है। जो आसुरी प्रकृति के लोग हैं, जो उस हितैषी परमात्मा में भी दोष देखते रहते हैं, उनको भी सुखमय जीवन दे देता है तो भक्तों को तो अपना आशीर्वाद दे ही देता है। वह स्वयं सत्य भक्ति को स्वीकार कर सबको यथार्थ आनन्द देता है। “अज्ञानता एक परोपकारी व्यक्ति को भी घमण्डी बना देती है।”

पापियों से भी अधिक पाप करने वाला व्यक्ति अगर ज्ञानरूप यज्ञ में श्रद्धा से समागत हो जावे तो वह निःसंदेह सम्पूर्ण पापों से अच्छी प्रकार तर जायेगा, क्योंकि ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण पाप कर्मों को भस्ममय कर देती है। ज्ञान के द्वारा संशय खत्म होने से पाप नष्ट हो जाते हैं और वह व्यक्ति शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

“हे परमेश्वर ! हे सुभग ! तू हमारे मन को धर्मानुकूल करके कल्याणपूर्ण बना, जिससे हम अज्ञान के विनाश करने और पाप-पुण्य के संग्रामों में पाप को दबाने में समर्थ होंगे। हमारे काम-क्रोधादि शत्रुओं की सेना को तो अवनत कर हम अपने मनोवांछित फल प्राप्ति के लिये तुझे भजते हैं।”

—सामवेद, मन्त्र-१५६० एवं ऋग्वेद, मंडल-८, सूक्त-१९, मन्त्र-२०॥

पाप करने वाले चोरों को, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को पीड़ा व कष्ट पहुँचाते हैं, राजधर्म और प्रजामार्ग से दण्डित कर, शिक्षा देकर श्रेष्ठ स्वभाव युक्त करें। “दूसरे के पदार्थ हरणरूप

पाप से एवं अन्याय से दूसरे के पदार्थ को खाने वाले पाप से निरन्तर स्वयं की रक्षा करें। नीति और दण्ड के भय से सब मनुष्यों को पाप से हटा धार्मिक विद्वानों की सेवा करके, प्रजा में ज्ञान, सुख और अवस्था बढ़ाने के लिए सब प्राणियों को शुभगुण युक्त सदा किया करें।”

—ऋग्वेद, मंडल-१, सूक्त-३६, मन्त्र-१४ ॥

यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर-पोषण के लिये ही पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

—भगवद्गीता, अध्याय-३, श्लोक-१३ ॥

जिस मनुष्य ने अन्तःकरण को जीतकर आसक्ति-रहित संपूर्ण भोग-सामग्री को त्याग दिया है, शरीर-सम्बन्धी कर्म करते हुए भी उसको पाप नहीं प्राप्त होता है। जो परिवार को महत्व देता है, अपने बच्चों को प्यार करता है, सामान्यतः वह पाप नहीं करता। पारिवारिक दायित्वों को महत्व न देने वाले व्यक्ति पाप-वासना में बह जाते हैं। अपने मन को अच्छे कर्म में लगाने वाला व्यक्ति, जैसे-ईश्वर की भक्ति, भजन, सत्संग आदि, पाप-कर्म नहीं करता। मुसलमान एवं ईसाईयों में तो पाप क्षमा होने का प्रचलन है-पाप किया-मसजिद या गिरजाघर में जाकर माफी मांग ली और मिल गई पाप से मुक्ति। हम हिन्दुओं में भी आजकल यह प्रचलन घर कर गया है-जैसे मंदिरों में दर्शन से, तीर्थ-स्थान पर जाकर, गुरु के द्वारा पूजा-पाठ से, गंगा-स्नान आदि से पाप क्षमा होने का प्रचलन। ईसाई सिद्धान्तों की तो सीधी घोषणा है-“We are Born Sinners” हम जन्म से पैदाईशी पापी हैं। इसके विपरीत हमारे परमेश्वर हमें आत्मज्ञान देते हैं, कहते हैं यह शरीर नश्वर है- भस्मान्त है, आत्मा अमर है- अमृत है। आत्मा को सत्य में श्रद्धा स्वतः ही होने लगती है। स्वामी दयानन्दजी ‘सत्यार्थ-प्रकाश’ में लिखते हैं कि “मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है।” सब प्रकार के सुख के विस्तार के लिए, सब मनुष्यों को सत्य मार्गगामी बनना चाहिए। आत्मा का बल सबसे बड़ा बल है। शरीर बलवान् होना चाहिए। निर्बलता पाप है। आदर्श, अनुशासन, पारस्परिक स्नेह सामाजिक बल है। परमेश्वर का शासन प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप है। वास्तविकता में यदि पाप-कर्म किया है तो उस व्यक्ति को दण्ड अवश्य मिलेगा। ‘इस जन्म में फल नहीं मिला तो मरकर कर्मों का फल अवश्य मिलेगा’ मन में इस विचार को रखते हुए मनुष्य मन, वाणी और शरीर से सदा शुभ कार्य ही करे। जिन महात्मा एवं आप्त ऋषियों के मानसिक, वाचिक और कायिक कर्म संसार के दुःख दूर करने के लिये होते हैं, उनके उपदेशों को सब मनुष्य सदा पुरुषार्थी होकर प्रीतिपूर्वक हृदय में ग्रहण करें या धारण करें तो कभी मानसिक पाप उदय ही न हो। मानसिक-पाप जब मन में उदय होता है और शरीर द्वारा कार्यान्वित होता है तब वह अपराध (गुनाह) हो जाता है। अपराध अदृश्य होता है और फैल जाता है और पाप दृष्टिगोचर हो जाता है। अपराधी दूसरे को यातना देता है, आतंक फैलाता है। अपराध अगर माता-पिता, पुत्र, आचार्य वा मित्र किसी ने भी किया हो तो उसे अपराध के अनुसार ताड़ना अवश्य देनी चाहिये। गुणी व्यक्ति के पास जाकर वह स्वयं को सुधार लेता है तो ठीक है, नहीं तो वह अपराधों को बार-बार दोहराता रहता है। दोहराने से वह अपराध या पाप हमसे दूर नहीं होता वरंच अन्तःकरण में स्थान पा लेता है।

“जो लोग पापमय जीवन व्यतीत करते हैं, परमात्मा उनकी वृद्धि कदापि नहीं करता। यद्यपि पापी पुरुष भी कहीं-कहीं फलते-फूलते हुए देखे जाते हैं, तथापि उनका परिणाम अच्छा कदापि नहीं होता।

अन्त में जिस ओर धर्म होता है उसी पक्ष की जय होती है । इस तात्पर्य से मन्त्र में यह कथन किया है कि परमात्मा पापी पुरुष और उनका अनुमोदन करने वाले दोनों का नाश करता है ।”- ऋग्वेद, मंडल-९, सुक्त-२४, मन्त्र-७ ॥

आत्म-उत्थान के इच्छुक व्यक्ति को तामसी, राजसी लोगों की कभी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए, न ही उनके कार्यों का अनुकरण करना चाहिए, क्योंकि इनका सम्मान करने से पाप का बीज हृदय में अंकुरित हो जाता है और अनुकूल परिस्थिति के होते ही साधक का पतन करने में सहयोगी बन जाता है । “पाखण्डियों अर्थात् वेदविरोधियों, अपराधियों अथवा शास्त्रोक्त निर्धारित कर्तव्यों के विरुद्ध चलने वाले विडाल वृत्ति वालों (छिपकर घात करने वालों) धूर्त, ठग, कुतर्की, बकवादी, बगुला-भक्त (ऊपर से शान्त-भीतर से घात लगाने वालों) छली-कपटी आदि मनुष्यों का वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए ।”

—मनुस्मृति, अध्याय-४, श्लोक-३०॥

उपरोक्त दुष्टों से बचकर प्रभु का गुण-कीर्तन, उपासना से साधक देव बन जाते हैं । जीवन का चालू रहना एक सहारा है, परन्तु स्थायी सहारा तो परमेश्वर का ही होता है । प्रभु ने हमारे लिए कुछ नियम बनाये हैं । जैसे, वृक्षों को काटने आदि में हिंसा तथा हिंसाजन्य पाप नहीं होता । पाप न होने का दूसरा कारण यह भी है कि उनके फल आदि का भक्षण करना ईश्वरीय व्यवस्था है और ईश्वरीय व्यवस्था तथा नियमों के पालन में कभी पाप नहीं होता बल्कि हम ज्यादा आनन्द में रहते हैं । वेदों की नियम-व्यवस्था एवं प्रभु का अनुकरण करना ही दुःखों का हटाना एवं सुख पाना है । जो पाप विश्वासघात से, घृणा से, अपवाद से, असत्य व्यवहार से हम कर बैठते हैं और जो पाप हम सोते हुए वा जागते हुए करते हैं, न्यायकारी परमेश्वर, संपूर्ण ऐश्वर्यवाला जगदीश्वर, ज्ञानियों का हितकारी, बड़ी बुद्धि वाला परमात्मा उस पाप से होने वाली दुर्गति से हमें बचावे एवं हमें ऐसे दुष्कर्मों से दूर रखे ।

“किसी मनुष्य को कुटिलगामी सर्प आदि दुष्ट जीवों के समान धर्ममार्ग में कुटिल न होना चाहिए, किन्तु सदा सर्वदा सरल भाव से ही रहना चाहिए ।”

—यजुर्वेद, अध्याय-६, मन्त्र-१२ ॥

पाप से घृणा करने वाला ही धर्म की तरफ आकृष्ट होता है, पाप को अच्छा मानने वाला कभी धर्म नहीं बन सकता । धार्मिक मनुष्य ही परमात्मा के कृपापात्र होकर सदा विजय को प्राप्त करते हैं, दुष्ट नहीं । परमात्मा भी धार्मिक मनुष्यों को ही आशीर्वाद देता है, पापियों को नहीं । परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धर्म का संचय करे, क्योंकि परलोक में सिर्फ धर्म एवं सत्य ही सहायक होता है, जिसका धर्म-सत्य से, कर्तव्य-पालन से, पाप दूर हो गया हो, उसको प्रकाशस्वरूप, परमदर्शनीय परमात्मा की प्राप्ति होती है, जो कि मानव-जीवन के लिए एक अमूल्य निधि है । अपनी त्रुटि के लिए दुःख अनुभव करते हुए पश्चाताप से पाप क्षय तो नहीं होता, परन्तु पाप करने वाले व्यक्ति को पाप-फल से तो नहीं (क्योंकि ईश्वर के न्याय में क्षमा का स्थान नहीं है) अपितु पाप-भावना से मुक्ति मिल जाती है । आगे के लिये भविष्य में पाप नहीं किये जाने का दृढसंकल्प ही मनुष्य को निष्पापता की ओर अग्रसर करता है और वह मनुष्य पवित्र हो जाता है ।

१९ सी, सरत बोस रोड

कोलकाता- ७०००२०

मोबाइल नं०- ९८३६८४१०५१

“ईश्वर के मुख्य पाँच काम हैं”

—खुशहाल चन्द्र आर्य

हमें ईश्वर द्वारा जितने भी काम होते हुए दिखाई देते हैं, उनको हम पाँच भागों में बाँट सकते हैं - (१) पृथ्वी उत्पत्ति, पालन व संहार करना (२) जीवों को उनके कर्मानुसार फल देना (३) सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान देना (४) मनुष्य की आत्मा में प्रेरणा देना (५) मनुष्य को सदबुद्धि देना। इनकी अलग-अलग व्याख्या इसी भाँति है।

१- सृष्टि की उत्पत्ति, पालन व संहार करना :- प्रलय की अवधि समाप्त होने के बाद ईश्वर सृष्टि की पुनः रचना करता है। जितने भी असंख्य जीव हैं, जिन जीवों की प्रलय में रहते हुए जिनकी अवधि पूरी हो गई है उन उनको नयी सृष्टि में जन्म देता है और फिर जैसे-जैसे अन्य जीवों की प्रलय में रहते हुए उनकी अवधि पूरी होती जाती है उसी हिसाब से वह जीव पृथ्वी पर आता रहता है। इस प्रकार से जीवों की उत्पत्ति का क्रम चालु रहता है। यहाँ यह जानने की बात है कि प्रलय की अवधि चार अरब बत्तीस करोड़ है और सृष्टि की अवधि भी इतनी ही है। अब तक सृष्टि रचे लगभग दो अरब वर्ष हो गये हैं। इस प्रकार अन्दाज दो अरब बत्तीस करोड़ वर्षों सृष्टि समाप्त होने में बाकी है। इतने वर्ष ईश्वर, सृष्टि का पालन और करेगा। फिर चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों तक प्रलय रहेगा, तत्पश्चात् ईश्वर पुनः सृष्टि रचेगा। जिस प्रकार बारह घण्टों का दिन और बारह घण्टों की रात होती है। रात में मनुष्य आराम लेकर फिर दिन में काम करने की ऊर्जा लेता है ठीक इसी प्रकार जीव भी सृष्टि में काम करके फिर प्रलय उतने ही समय आराम करके सृष्टि के लिए काम करने की ऊर्जा लेता है। जैसे दिन-रात का समय बराबर है वैसे ही सृष्टि और प्रलय का समय भी बराबर है।

२- जीवों का उनके कर्मानुसार फल देना:- दूसरा काम ईश्वर का जीवों को उनके कर्मानुसार फल देना है, यानि जीव कर्म करने में स्वतंत्र और फल पाने में ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अधीन है यानि परतन्त्र है। यहाँ यह बात जानने की है कि योनि दो किस्म की होती है एक भोग योनि और एक कर्म योनि। भोगयोनि का तात्पर्य यह है कि उसको किये हुए कर्मों का फल नहीं मिलता। वे कर्म स्वभाविक कर्म होते हैं जो ईश्वर की तरफ से सबको करने होते हैं। जैसे सोना-जागना, उठना-बैठना, खाना-पीना, खेलना-कूदना तथा सन्तान उत्पत्ति करना। ये कर्म पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्षादि में अधिक होते हैं। दूसरे कर्म, नैमित्तिक कर्म है जिनको करने से ईश्वर अच्छे कर्मों का सुख के रूप में अच्छा फल और बुरे कर्मों का दुःख के रूप में बुराफल देता है। ये कर्म मनुष्य अधिक करता है। इन कर्मों में पढ़ना-लिखना, किसी को दुःख देना-सुख देना, किसी की लाभ-हानि करना, किसी की प्रशंसा-निन्दा करना। ये कर्म मनुष्य अधिक करता है और पशु-पक्षी बहुत कम करते हैं। जैसे कुत्ता यदि मालिक की नजर से छिपा कर रोटी ले जाता है तो वह दुबक कर भय से निकलता है उसको भय है कि मालिक देख न लेवे और जब मालिक के बुलाने से रोटी ले जाता है तो वह बिना भय के मालिक के सामने से हो कर जाता है। यह कुत्ते का नैमित्तिक ज्ञान है। यह इतना कम है कि ईश्वर इसका फल पशु-पक्षियों को नहीं देता। ये भोग योनि है, इनको किये हुए कर्मों का फल ईश्वर नहीं देता। मनुष्य में स्वाभाविक और नैमित्तिक दोनों ज्ञान है। स्वाभाविक ज्ञान बहुत कम केवल काम चलाने लायक है। जैसे उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना-जागना व सन्तान उत्पत्ति करना, यह सब काम मनुष्य भी करता है परन्तु इन कर्मों का फल ईश्वर नहीं देता। मनुष्य के नैमित्तिक कर्म जो सिखाने से सीखा जाता है जैसे पढ़ना-

लिखना, परोपकार करना, किसी से ईर्ष्या द्वेष करना। इसीलिए ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा चार वेद कहलवाये जिनको सुनकर या पढ़कर मनुष्य उत्तम काम करते हुए और बुरे काम छोड़ते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सके। ईश्वर मनुष्य को उनके किये कर्मों का फल कुछ तो उसके जीवन में ही दे देता है, बाकी शेष कर्मों का फल उसको पुनर्जन्म में जाति, आयु व भोग के रूप में देता है। जैसे किसी ने चोरी की उसको छः महीनों की कैद हो गई तो इसी जन्म में उसको फल मिल गया। कुछ कर्मों के फल इस जन्म में नहीं मिल पाते हैं उनका फल उसको अगले जन्म में मिलेगा जिसको भाग्य भी कहते हैं।

३- सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान देना - जैसा ऊपर में लिख चुके हैं कि कर्म दो किस्म के होते हैं। स्वभाविक तथा नैमित्तिक। स्वभाविक कर्मों का ईश्वर कोई फल नहीं देता। नैमित्तिक कर्म वे होते हैं जो सिखाने से सीखे जाये। बिना सिखाये नहीं सीखे। यह देखा गया है कि किसी मनुष्य के बच्चे को जन्म होते ही पशुओं में रख दिया जाये तो वह पशुओं की बोली और पशुओं के कर्म करने ही सीखेगा, मनुष्य के नहीं। इसीलिए ईश्वर में सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों जिनके नाम अग्नि, वायु, आदित्य व अंगीरा उनके मुख से चार वेद जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्व वेद हैं, क्रमशः उच्चारित करवाये। इन वेदों को सृष्टि के आरम्भ में जितने भी स्त्री-पुरुष पैदा हुए थे मुनी ने सुना, परन्तु ब्रह्म ऋषि जिसकी समाता शक्ति बहुत तेज थी इसने सुनते ही चारों वेद कण्ठस्थ कर लिये और वे आगे भी लोगो के सुनाते थे फिर गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र को सुनाते रहे और यह परम्परा स्याही, कलम, दवात का आविष्कार हुआ तब तक चलती रही और बाद में इनको लिपिबद्ध करने के बाद भी बहुत से ब्राह्मणों ने इनको कण्ठस्थ करके सुनाते रहे। इसीलिए वेदों का दूसरा नाम श्रुति है।

४- मनुष्य की आत्मा को प्रेरणा देना :- महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ “सत्यार्थ प्रकाश” में लिखा है कि जब मनुष्य कोई बुरा काम करने के लिए तैयार होता है तो उसकी आत्मा में लज्जा, भय व शंका उत्पन्न होती है और उसको वह काम न करने को कहती है परन्तु अपने हठ, दुराग्रह, वे विवशता के कारण वह काम कर बैठता है। इसी प्रकार मनुष्य कोई अच्छा व बुरा काम करने के लिए तैयार होता है तो उसको उत्साह, उमंग व आनन्द की अनुभूति होती है और उसको वह काम करने को कहती है। यह प्रेरणा ईश्वर की तरफ से होती है। इसलिए यह ईश्वर का चौथा काम हुआ।

५- मनुष्य को सदबुद्धि देना - जब मनुष्य कोई काम करने के लिए तैयार होता है तब वह यदि ईश्वर का ध्यान करके, सच्चे मन से ईश्वर से कुछ माँगता है तो ईश्वर उसको सदबुद्धि देकर उसको अच्छे काम करने के लिए उत्साहित करता है। इसीलिए हम गायत्री मन्त्र में सदबुद्धि की याचना करते हैं। महर्षि दयानन्द कहते हैं कि मनुष्य को अपने पूरे पर्यास से कार्य करने के बाद भी किसी काम में सफलता नहीं मिलती है, उस परिस्थिति में ईश्वर से याचना करनी चाहिये। तब ईश्वर जरूर सुनता है। बिना पूरा पर्यास किये आलसी की ईश्वर कभी नहीं सुनता।

गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स,
१८०, महात्मा गान्धी रोड (दो तल्ला)

कोलकत्ता-७००००७

फो० २२१८३८२५(०३३) मो० ८२३२०२५५९०

आर्य समाज कलकत्ता के प्रकाशन

पुस्तक विक्रेता, आर्य संस्थाओं, उपदेशकों को ४० प्रतिशत की छूट दी जाती है।

पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
१. युग निर्माता सत्यार्थ प्रकाश-संदर्भ दर्पण (ऐतिहासिक संदर्भ में सत्यार्थ प्रकाश की यात्रा का दस्तावेज)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७०.००
२. स्वामी दयानन्द का राजनीति दर्शन (स्वामी दयानन्द के राजनीति दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन)	डॉ० लाल साहेब सिंह	५०.००
३. भारतीय समाज (उन्नीस उत्कृष्ट ग्रंथ)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय द्वारा सम्पादित	१५.००
४. त्रैतवाद का उद्भव और विकास (त्रैतवाद का उसके उद्भव और विकास के वैशिष्ट्य को स्पष्ट करने वाला दर्शन का शोधपूर्ण ग्रंथ)	डॉ० योगेन्द्र कुमार शास्त्री	२०.००
५. उपनिषद् रहस्य (ईश केन और प्रश्न उपनिषदों की सारगर्भित व्याख्या)	महात्मा नारायण स्वामी "सरस्वती"	२०.००
६. श्री श्री दयानन्द चरित	श्री सत्यबन्धुदास	१०.००
७. महर्षि दयानन्द की देन (निबन्धों का संग्रह)	आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित	३०.००
८. धर्मवीर पं० लेखराम	स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती	५०.००
९. आनन्द संग्रह (स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के उपदेशामृत)	वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज	२५.००
१०. भाई परमानन्द (बलिदानी वंश के कुलदीपक की अमर कहानी)	श्री बनारसी सिंह	१०.००
११. धर्म का आदि स्रोत	पं० गंगाप्रसाद जी	३०.००
१२. संकल्प सिद्धि (विचारों के संकल्प विकल्प का अनोखा चिन्तन)	स्वामी ज्ञानाश्रम	३०.००
१३. ज्योतिर्मय (श्रीयुत् टी. एल. वास्वानी द्वारा लिखित (Torch Bearer) का हिन्दी अनुवाद)	टी.एल. वास्वानी	३०.००
१४. वेद-वैभव	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१५०.००
१५. कर्मकाण्ड	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१०.००
१६. स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज का योगदान	ले० सत्यप्रिय शास्त्री	५०.००
१७. आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	८०.००
१८. मेरे पिता	इन्द्र विद्यावाचस्पति	५०.००
१९. वेद और स्वामी दयानन्द	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	४०.००
२०. व्यतीत के यश की धरोहर (महासम्मेलनों के संस्मरणात्मक आकलन)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	६०.००
२१. Torch Bearer	टी० एल० वास्वानी	३५.००
२२. पं० गुरुदत्त लेखावली	मुनिवर पं० गुरुदत्तजी 'विद्यार्थी'	२५.००
२३. प्रार्थना प्रवचन	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	५०.००
२४. सन्धारहस्य एवं सन्ध्या अष्टांग योग	प्रो० चमूपति एवं स्व० आत्मानन्द (एक जिल्द)	३०.००
२५. बंगाल शास्त्रार्थ	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	४०.००
२६. वेद में गोरक्षा या गोवध	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	५.००
२७. वेद रहस्य	महात्मा नारायण स्वामी जी	३५.००
२८. वेद बन्दन	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१६०.००
२९. राज प्रजाधर्म प्रबोधभाष्य	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७०.००
३०. वेद-वीथिका	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१६०.००

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित।